पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा ७३, ता. २९-३-१९८९
शिकोहाबाद, प्रवचन नंबर P ०५

Version 2

ये श्री समयसारजी परमागम शास्त्र है। उसका कर्ता-कर्म अधिकार चलता है। उसकी ७३ नंबर की गाथा है। उसमें शिष्य ने प्रश्न पूछा कि अनादिकाल से मैं दुःखी हूँ, पर्याय में दुःख है और उसके नाश का उपाय क्या है, उसकी विधि क्या है? विधि पूछते हैं। यानि दुःख का अभाव तो होगा, ऐसा तो विश्वास है। क्योंकि दुःख है, (वह) आत्मा का स्वभाव नहीं है, विभाव है। तो विभाव तो कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है। वो तो निकल जाएगा, ऐसा तो विश्वास है। मगर दुःख का अभाव का उपाय नहीं जानता। विभाव होने से दुःख लंबे टाइम टिकता नहीं है। जैसे शरीर में बुखार आवे तो लंबे टाइम टिकता नहीं है। ऐसे राग-द्वेष-मोह का जो परिणाम है, वो विभाव है, आत्मा का स्वभाव नहीं है।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। ज्ञान तो टिकता है, अनादि-अनंत। ज्ञान का नाश होता नहीं है। पर जो अज्ञान है, राग-द्वेष-मोह, वो तो विभाव है। विभाव होने से वो टल जाता हैं, इतना तो विश्वास मेरे में आ गया। आपकी कृपा से इतना तो ख्याल आ गया। मगर वो दुःख के नाश का उपाय मैं नहीं जानता हूँ। उसकी विधि भी नहीं जानता हूँ। हल्वा बनता है, वो तो जानता हूँ। हलवा खाने से पेट भरता है, शरीर में शक्ति भी आती है, इतनी बात तो मैं जानता हूँ। मगर हल्वा बनाने की विधि मैं नहीं जानता। ऐसी दशा में राग-द्वेष-मोह, क्रोध-मान-माया-लोभ, ऐसा विकल्प-भाव, कषायभाव उत्पन्न होता है। और यह विभाव है तो टल जाता है, मगर वो टालने की विधि मैं नहीं जानता। कैसे टले? दुःख के नाश का उपाय क्या है, कृपा करके बताओ। तो आचार्य भगवान ने ऊपर करुणा करके उसका उपाय ७३ गाथा में बताया है।

प्रथम, मैं आत्मा का जो स्वरूप बताऊँगा, उसका पहले निर्णय करना कि मैं कौन हूँ? पहले निर्णय करना मानसिक-ज्ञान में, अनुमान-ज्ञान में, पहले निर्णय कर ले। और निर्णय करने के बाद, उसका लक्ष्य करने से और पर का लक्ष्य छूटने से, उसका अभाव हो जाएगा।

तो चार, आत्मा के चार विशेषण कहे हैं कि मैं एक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं ममत्व रहित हूँ और मैं दर्शन-ज्ञान से वर्तमान में परिपूर्ण हूँ। चार प्रकार आत्मा के हैं। आत्मा का (तो) एक ही प्रकार है, (लेकिन) चार धर्म से समझाया जाता है। एक भी आत्मा का धर्म है, शुद्ध भी आत्मा का धर्म है, निर्ममत्व-भाव आत्मा का धर्म है और दर्शन-ज्ञान से परिपूर्ण, वो आत्मा का धर्म है। आत्मा का धर्म धर्मी के साथ रहता है। आत्मा का जो धर्म है, यानि स्वभाव है, वह धर्मी यानि स्वभाववाले के साथ रहता है। स्वभाव (और) स्वभाववाला एक चीज़ है। तो जो अज्ञानी आत्मा के स्वभाव को जानता नहीं है, धर्मी को जानता नहीं है, अपने को जानता नहीं है, उसके लिए, (उसको) वो ही चार प्रकार के धर्म की मुख्यता से धर्मी जानने में आ जाता है। इसलिए धर्म के द्वारा धर्मी समझाया जाता है। तो दो धर्म के द्वारा धर्मी को बताया, अभी दो धर्म बाकी रहा।

तीसरा धर्म है। धर्म यानि आत्मा का स्वभाव। स्वभाव यानि त्रिकाल-स्वभाव। क्षणिक-स्वभाव,

क्षणिक-विभाव, क्षणिक-स्वभाव और त्रिकाल-स्वभाव। क्षणिक-विभाव का नाम राग-द्वेष-मोह। क्षणिक-स्वभाव का नाम संवर, निर्जरा और मोक्ष। और त्रिकाल-स्वभाव का नाम परमपारिणामिकभाव लक्षण से लक्षित ये (मैं) ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण चिदानंद, ज्ञाननंद आत्मा, वो मैं। विभाव, क्षणिक-विभाव, क्षणिक-स्वभाव और त्रिकाल-स्वभाव।

तो इस त्रिकाल-स्वभाव के अंदर चार प्रकार के धर्म रहते हैं। अनादि-अनंत रहते हैं। एक रहता है, तीनोंकाल एक ही रहता है, एक ज्ञायकभाव। '**एको अहम्**' और शुद्ध रहता है, अनादि-अनंत। अशुद्ध होता ही नहीं है। और निर्मम, ममता रहित होता है। वीतरागी प्रतिमा है। ये आत्मा है ना, वीतरागी (प्रतिमा है)। जैसे जिन-प्रतिमा वीतरागी है, उसके साथ राग का संबंध कोई है नहीं। राग नहीं है, तो राग का निमित्त भी उनकी देह पर नहीं होता है। समझ में आया? दिगम्बर प्रतिमा की बात चलती है। वो सच्ची प्रतिमा है। रागी नहीं है, तो राग का निमित्त भी उसके ऊपर नहीं है। वीतरागी प्रतिमा, जैसे बिंब है, ऐसे मैं भी वीतरागी प्रतिमा हूँ। कभी? कि अभी? अभी! तीनोंकाल। निर्ममत्व शब्द आया ना? ममता से मैं रहित हूँ, अनादि-अनंत। यानि वीतराग मैं मूर्ति हूँ। चौथे बोल में, मैं ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ। तो अभी तीसरे बोल की व्याख्या आचार्य भगवान समझायेंगे।

पुद्गलद्रव्य जिसका स्वामी है ख्याल करना, ये शुभाशुभभाव हैं, उसका स्वामी आत्मा नहीं है। स्वामी समझे? मालिक! मालिक आत्मा नहीं है। कोई भाव है, तो उसका मालिक भी होना चाहिये। जैसे ये बँगला है, मकान, तो उसका कोई मालिक तो होना चाहिए। उसका मालिक पुद्गल है, मकान का मालिक पुद्गल है।

मुमुक्षुः- कस्तूरचंदजी नहीं? कस्तूरचंदजी का मकान है।

उत्तरः- कस्तूरचंदजी? नहीं! उनका मकान नहीं है। उनका (नहीं) है। वो कस्तूरचंदजी हैं, वो ज्ञान के स्वामी हैं। मकान के स्वामी नहीं हैं। एक चीज़ के दो स्वामी नहीं होते हैं। पदार्थ एक और उसका स्वामी दो, ऐसा होता नहीं है। और दाल का व्यापार करता है, तो दाल का स्वामी कौन?

मुमुक्षुः- दाल का स्वामी, दाल।

उत्तरः- दाल पुद्गल है। रविंद्रबाबू (नहीं हैं) या ये पिंकी (नहीं है)। और दूसरे का क्या नाम?

मुमुक्षुः- बबलू।

उत्तरः- बबलू नहीं है। उसका स्वामी पुद्गल है। वो तो ठीक, इधर तो अंदर की बात करते हैं। अंदर की बात। यह व्यवहार-रत्नत्रय का जो परिणाम शुभराग है, उसका स्वामी कौन है? कि उसका स्वामी पुद्गल है। यह सुनने का जो राग है ना, वह प्रशस्त राग है। प्रशस्त (राग है)। जिनवाणी सुनने का जो भाव आया, वो राग है। उस राग का स्वामी सुननेवाला नहीं है, (उस) राग का स्वामी जड़-पुद्गल है। जड़ का स्वामी जड़ होता है। चेतन की भ्राँति हो गई, जीव (को), जगत को। शुभाशुभभाव चेतन है। चेतन के साथ में जोड़े (में), बाजू में होता है, तो चेतन होने की भ्राँति हो गई। चेतन होता नहीं है।

जैसे मैसूर स्टेट में चंदन का वृक्ष बहुत होता है, चंदन का वृक्ष, सूखड़ का। उसके पास साग का वृक्ष भी दूसरा उत्पन्न होता है, आजू-बाजू में दूसरा वृक्ष भी होता है। तो उसकी जो सुगंध है ना, उसमें बैठ जाती है, सुगंध। तो ये ठग लोग क्या करते हैं? वो लकड़ी काटकर ये भूलेश्वर में ढगला

करके बेचते हैं। तो लेनेवाला लकड़ी लेकर सूँघता है, तो उसमें सुगंध तो आती है, तो सूखड़ मानकर ले जाता है। और बाद में कपाट (अलमारी) में रख देता है। छह महीने होने के बाद, कोई ज़रूरत पड़ी। अपने पास सूखड़ तो बहुत है, निकालो। चंदन बहुत है, इस तरह कपाल पर लगा लो, मिट जाएगा। लिया, लकड़ी था, सुखड़ कहाँ था? ऐसे चिदानंद भगवान के जोड़े (में रहता है), आत्मा के जोड़े (में), साथ में। जोड़े समझे? बाजू में। बाजू में शरीर भी है, कर्म भी है और शुभाशुभभाव की लकड़ी भी है। वह लकड़ी है। वो चेतन तो नहीं है, चेतन का परिणाम भी नहीं है क्योंकि चेतन का लक्षण उसमें नहीं है। चेतन का लक्षण जानना-देखना और शुभाशुभभाव में जानने-देखने की क्रिया होती नहीं है। भले जोड़े (रूप) बाजू में हो, तो भी ये चेतन हो सकता नहीं है।

बराती के पास अनवर रहता है, बाजू में, दूल्हे के पास में, क्या रहता है? अनवर ही है यहाँ भी? अनवर है, मगर वो वर होता नहीं है। (दूल्हे की तरह) उसके गले में माला आती नहीं है। कन्या उसको देते नहीं है। और बाद में सब चले जाएँ और अकेला अनवर आवे, तो आने भी न देवें। अनवर को आवकार (आमंत्रण) देते हैं? (अरे!) अब अनवर भी नहीं है। समझे?

ऐसे शुभाशुभभाव बाजू में होते हैं, आत्मा में नहीं होते हैं। और धर्म को आत्मा में स्थापना, वो गलत बात अज्ञान है, मिथ्यात्व है। भैया! तो वो शुभाशुभभाव होते हैं। सुनने का जो राग आया, उसका स्वामी कौन है? आज तक तो माना था कि इसका स्वामी मैं हूँ, मेरे में होता है, मैं उसको जानता हूँ, मैं उसको करता हूँ, मैं उसको भोक्ता हूँ, आज तक तो ऐसा शल्य था। मगर जब समर्थ आचार्य भगवान मिले, कुंदकुंद जैसे और टीकाकार मिले, उनकी वाणी में आया कि तू उसका स्वामी नहीं है, उसका स्वामी दूसरा है। (उसका) कौन स्वामी है? पुद्गल उसका स्वामी है।

अज्ञानी जीव पूछता है कि प्रभु! मैं उसका स्वामी नहीं हूँ, तो मेरे को (उसका) स्वामी बताओ? कोई स्वामी बताओ, तो स्वामित्व छूट जाए मेरा। अभी बताता हूँ, **पुद्गलद्रव्य जिसका स्वामी है** क्या लिखा है? देखो! **पुद्गलद्रव्य जिसका स्वामी है**, मालिक है, आहाहा। **ऐसा जो क्रोधादिभावोंका विश्वरूपत्व (अनेकरूपत्व)** क्रोध-मान-माया-लोभ, (वो) तीव्र-पाप। क्रोध-मान-माया-लोभ, मंद, वो शुभभाव, पुण्य-तत्त्व है। आहाहा! पर जाति एक है। जाति कषाय की है, जाति कषाय की है। अकषाय वीतरागभाव उसमें नहीं है, इसलिए उसका स्वामी पुद्गल है। आहाहा! तू उसका स्वामी नहीं है।

उसके स्वामीपनेरूप स्वयं सदा ही नहीं परिणमता होनेसे ममतारहित हूँ; स्वयं मैं आत्मा, चिदानंद आत्मा हूँ। और क्रोधादि-भाव होता है मगर उसका स्वामी बनकर मैं कभी हो जाऊँ, बन जाऊँ स्वामी, ऐसा कभी होनेवाला नहीं है। क्योंकि मैं उसका पुद्गल का स्वामी बनूँ, तो मैं चेतन रह सकता नहीं, तो जड़ हो जाये। तो आत्मा चेतन है, शुभाशुभभाव जड़-भाव हैं। आहाहा! और जड़ से आत्मा को लाभ मिले, तीनकाल में होनेवाला नहीं है। प्रभु। आहाहा! शांति से सुनने जैसी बात है। वो तो ये दिगम्बर शास्त्रों में बात है। आपका ही शास्त्र है। हम तो पहले स्थानकवासी थे, बाद में दिगंबर हुये। आहाहा!

मुमुक्षु:- नहीं। आप सच्चे दिगंबर हैं।

उत्तर:- हे प्रभु! वो शुभाशुभभाव, व्यवहार-रत्नत्रय का परिणाम, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का

राग, नवतत्त्व की श्रद्धा का राग, छहद्रव्य का इन्द्रियज्ञान, उसका स्वामी पुद्गल है। आत्मा स्वामी नहीं है। वो स्वामीरूप से कभी परिणमता नहीं है। क्रोधरुप से तो परिणमता है, मगर क्रोध का स्वामीरूप आत्मा बनता नहीं है। क्रोधरूप का परिणमन हो, मगर उसका स्वामी पुद्गल भी हो और चेतन भी हो, (ऐसे) एक भाव का दो मालिक होता नहीं है।

आहाहा! तो शुभाशुभभाव, उसका स्वामी पुद्गल है। आहाहा! इसमें लिखा है, उसका अर्थ है। संस्कृत में लिखा है। हाँ! उसका अनुवाद तो जयपुर में हुआ है। आहाहा! जयचंद पंडित हो गए ना, उन्होंने अनुवाद किया है। **पुद्गलद्रव्य जिसका स्वामी है ऐसा जो क्रोधादिभावोंका विश्वरूपत्व (अनेकरूपत्व) उसके स्वामीपनेरूप स्वयं सदा ही नहीं परिणमता,** क्रोधादिरूप परिणमता है, मगर उसके स्वामीरूप से नहीं परिणमता है, तो साधक बनता है। और जब क्रोधादिरूप परिणमना बंद हो जाता है, तो परमात्मा बन जाता है। पहले स्वामित्वबुद्धि छूटती है। पहले अभिप्राय सही हो जाता है। पहले....

मुमुक्षु:- अभिप्राय सही हो जाता है। बहुत सुंदर!

उत्तर:- अभिप्रायपूर्वक क्रोध का परिणाम और अभिप्राय रहित क्रोध का परिणमन, बहुत फेर है। क्रोधादिभाव मेरा है, ऐसा अभिप्राय रखता है, तो अज्ञानी बन जाता है। और अभिप्राय सही हो गया कि मैं उसका स्वामी नहीं (हूँ), वो तो पुद्गल द्रव्य उसका स्वामी है, तो अभिप्राय में स्वामित्वपना छूट गया। क्रोध नहीं छूटता है। क्रोध छूटे तो-तो परमात्मा हो जाता है। गृहस्थ अवस्था में क्रोध-मान-माया-लोभ शुभाशुभभाव रहता है। शुभाशुभ रहने पर भी मैं उसका स्वामी नहीं हूँ। अभिप्राय पलट गया। पहले मानता था कि ये तत्त्व मेरा है, मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ। श्रीगुरु का उपदेश सुना कि तू तो चेतन का स्वामी है, जड़ का स्वामी तू नहीं है। नहीं हो सकता, हो सकता ही नहीं। आहाहा! अशक्य है।

तो **उसके स्वामीपनेरूप स्वयं सदा ही नहीं परिणमता होनेसे ममतारहित हूँ;** आहाहा! मैं तो त्रिकाल निर्ममत्व वीतरागी प्रतिमा हूँ। आहाहा! मैं वीतरागी प्रतिमा अभी हूँ। आहाहा! जैसे जिनबिम्ब है, वीतरागी, ऐसे सब आत्मा भगवान हैं। आहाहा! देह को मत देख, कर्म को मत देख, राग को मत देख, शास्त्रज्ञान, इन्द्रियज्ञान को मत देख, गुण-गुणी (के) भेद को मत देख। अकेला गुणी परमात्मा मैं हूँ। आहाहा! ऐसा देख तो दिखाई देगा। देखनेवालों को दिखता है, नहीं देखनेवालों को दिखाई देता (नहीं है)। होने पर भी दिखाई नहीं देता। होने पर भी दिखाई नहीं देता। जैसे सूर्य का उदय हो और जन्माँध हो, तो उसको दिखाई नहीं देता। अनादि-मिथ्यादृष्टि जन्माँध है। उसको आत्मा होने पर भी दिखाई नहीं देता। देखनेवालों को दिखाई देता है, तो अनुभव हो जाता है।

तो कहते है कि मैं **ममतारहित हूँ**; उसका स्वामी नहीं हूँ ना, इसलिये मैं ममतारहित हूँ। तीन बोल हुआ। आहाहा! ममत्व छूट जाता है, क्रोध नहीं छूटता है। ममत्व छूटने से सम्यग्दर्शन होता है। क्रोधादिभाव छूटने से अरिहंतदशा हो जाती है। पहले ममत्व छूटता है, श्रद्धा सम्यक् होती है, चारित्र के अंश में स्थिरता होती है, बाद में पूर्ण स्थिरता हो जाती है। क्रोध-मान-माया-लोभ का (अभाव हो जाता है)। अनंतानुबंधी का अभाव पहले होता है। बाद में अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन, क्रोध-मान-माया-लोभ का अभाव होकर, आत्मा परमात्मा हो जाता है।

जो शक्ति में पड़ा था, वो व्यक्तदशा में आया। जो शक्ति में है (वो ही प्रगट होता है)। शक्ति की व्यक्ति होती है। आत्मा में राग-द्वेष-मोह की शक्ति नहीं है। इसलिए उस शक्ति की व्यक्ति नहीं है। वो पुद्गल की शक्ति की व्यक्ति है। वो पुद्गल का परिणाम है, जीव का परिणाम नहीं है। पुद्गल का परिणाम क्यों? कि पुद्गल के संग से होता है, इसलिए पुद्गल का परिणाम कहा जाता है। जैसे जल, अग्नि के संयोग से उष्ण होता है, तो उष्ण पर्याय का नाम भी अग्नि है, क्योंकि उष्णता लक्षण अग्नि का है, जल का नहीं है।

वैसे राग-द्वेष-मोह का जो लक्षण है, वो पुद्गल का है, पुद्गल। पुद्गल का क्या है? अलग होना और इकट्ठा होना। समझे? पुद् और गल। हाँ! पुनर्गलन! ऐसे यह शुभाशुभभाव पुनर्गलन (स्वभाव) वाला है। बढ़ता है और घटता भी है। तो यह पुद्गल की जाति है। पुद्गल के संग से हुआ (है)। यह मेरी जाति नहीं है। उपयोग मेरी जाति है, जो मेरे संग से उत्पन्न होता है। आहाहा! सुशील बाबू, वहाँ बैठे हैं? बराबर! मैंने देखा ऐसा, नहीं है। वहाँ बैठे हैं। अच्छा! मोटर में आए थे ना इसलिए याद रहता है। सबका नाम याद नहीं रहता है।

क्या कहा? मैं निर्ममत्व अभी (हूँ)। ये मैं निर्ममत्व हूँ, वो ही पर्याय में ममत्वभाव का नाश करने का उपाय है। मैं निर्मोही हूँ, वो ही मोह का नाश का उपाय है। मैं अभी निर्मोही हूँ। तो मैं निर्मोही हूँ, तो परिणाम में मोह चला जाता है। आहाहा! मैं अभी निर्मम हूँ, तो पर्याय में मेरापना, ममता छूट जाती है। ममताजन्य दुःख भी (छूट जाता है), ममता में दुःख होता है। आहाहा!

तीन बात कहीं, अब चौथी बात। **चिन्मात्र ज्योतिकी,** आहाहा! ज्ञानमात्र आत्मा का स्वभाव। **चिन्मात्र** शब्द का अर्थ क्या है? कि 'चिन्' और 'मात्र' शब्द है। 'चिन्' यानि ज्ञानमात्र। ज्ञान, 'मात्र' जो शब्द आया वह राग, द्वेष, मोह का निषेधवाचक है। आत्मा मात्र ज्ञान ही है। कथंचित् ज्ञान नहीं और कथंचित् राग नहीं। नहीं, क्योंकि राग आत्मा का धर्म नहीं है इसलिए कथंचित् लागू पड़ता नहीं है। राग आत्मा का धर्म नहीं है, इसलिए कथंचित् लागू पड़ता नहीं है।

ज्ञान तो आत्मा का धर्म है इसलिए आत्मा कथंचित् ज्ञानमय, कथंचित् आनंदमय, कथंचित् सुखमय, ऐसे-ऐसे है। तो ज्ञानमय है, सर्वथा ज्ञानमय है। कथंचित् ज्ञानमय और कथंचित् रागमय, ऐसा है नहीं। ज्ञानमात्र, शब्द आहाहा! मात्र, ओन्ली, फ़क्त। 'मात्र' का अर्थ क्या? ओन्ली, फ़क्त आत्मा ज्ञानमय है।

मुमुक्षु:- सिर्फ ज्ञानमय है।

उत्तर:- सिर्फ। हाँ! ....शब्द मिले नहीं हिंदी का। सिर्फ ज्ञानमय है। आहाहा! (ऐसे तो) एकांत हो जाएगा। कि हमको इष्ट है (क्योंकि) साध्य की सिद्धि हो जाती है, उसमें। हाँ! आत्मा में अनुभव होता है। कथंचित् ज्ञानमय और कथंचित् रागमय, आहाहा! वो अनिर्णय है। तेरा निर्णय नहीं है। आहाहा! अभी निर्णय की बात आई, इसलिए ध्वनि आई। निर्णय तो करो पहले कि मेरा स्वरूप क्या है? आहाहा! तो मेरे में ममत्व होता है कि (किसी) और जगह ममत्वभाव रहता है? तेरे में ममत्वभाव रहता है कि (किसी) और जगह में रहता है? राग तेरे में होता है कि (किसी) और जगह पर है? (किसी) और जगह पर है, मेरी जगह में नहीं है। मेरे क्षेत्र में राग का प्रवेश नहीं है। मेरे द्रव्य में राग नहीं, क्षेत्र में राग

नहीं, काल में राग नहीं, भाव में राग नहीं है। मैं तो ज्ञानमात्र आत्मा हूँ। आहाहा!

ज्ञानमात्र शब्द है, वो विभाव का निषेधवाचक मात्र शब्द है। सिर्फ, सिर्फ, ओन्ली। आहाहा! केवल। केवल ज्ञानमात्र मैं मूर्ति हूँ, ज्ञान की। आहाहा! ज्ञान की डली है आत्मा। ज्ञान-आनंद से भरा हुआ समुद्र आत्मा है। आत्मा में ज्ञान है मगर अज्ञान नहीं है। अज्ञान-धर्म आत्मा का नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु:- बहुत बढ़िया! बहुत अच्छा!

उत्तर:- आत्मा कभी अज्ञानी होगा ही नहीं है, होगा ही नहीं। चिंता मत कर! तू तो तीनोंकाल, चिन्मात्र-ज्ञानमय रहा, आज भी है और अनंतकाल रहनेवाला है। निशंक हो जा, निशंक हो जा। मेरे स्वभाव में राग का प्रवेश नहीं है। तीनकाल में हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं। उसका नाम प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना है। आहाहा! भूतकाल में था नहीं, प्रतिक्रमण हो गया। वर्तमान में है नहीं, आलोचना हो गया। भविष्य में होनेवाला नहीं है, प्रत्याख्यान हो गया। सोनगढ़ का संत कोई प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, सामायिक को मानता है कि नहीं? अरे भैया! तूने स्वरूप ही, सुना ही नहीं है कि प्रतिक्रमण, आलोचना का स्वरूप क्या है, तूने सुना ही नहीं है। आहाहा! भूतकाल में देखता हूँ मैं आत्मा को, तो राग उसमें नहीं था, वर्तमान में नहीं है और भविष्यकाल में कोई काल (ऐसा) नहीं आएगा कि रागी मैं हो जाऊँगा। मैं तो निरागी परमात्मा हूँ, चिन्मात्र-ज्योति हूँ। आहाहा!

ये स्वभाव की बात जगत ने सुनी नहीं है। विभाव की बात सुनी है मगर स्वभाव की बात, आहाहा! सुनी नहीं है। कि आचार्य भगवान ने कहा कि तूने आज तक क्रोध-मान-माया, कर्ता-भोक्ता की बात सुनी। मगर चिन्मात्र आत्मा है, वो बात तूने आज तक सुनी नहीं है। यानि रुचिपूर्वक सुनी नहीं है। सुनने का फल आया नहीं है, तो सुनी नहीं है। सुनने का फल आना चाहिए, तो सुनी कहा जाता है।

मुमुक्षु:- बहुत बढ़िया! अमृत बरसे है पंचम कालमां।

उत्तर:- चिन्मात्र आत्मा तो, आत्मा तो, चिन्मात्र (है)। भूतकाल में राग का प्रवेश नहीं था, वर्तमान में राग मेरे में नहीं है। जहाँ मैं हूँ, वहाँ राग नहीं है और जहाँ राग है, वहाँ मैं नहीं। राग (को) राग में रहने दो, राग (को) राग में रहने दो। मैं तो ज्ञानमय चिन्मात्र आत्मा हूँ। आहाहा!

भूतकाल में (राग मेरे) था नहीं, वर्तमान में है नहीं, भविष्य में होगा नहीं। आहाहा! इसका नाम प्रतिक्रमण, प्रत्याखान और आलोचना है। विकल्प का नाम, शुभभाव का नाम, प्रतिक्रमण नहीं है। वो तो ज़हर है, वह तो आस्रवतत्त्व है, भैया, आहाहा! ये सब दिगंबर संतो की कही (हुई) बात है। हों! वो मेरे घर की बात नहीं है। आहाहा! व्यवहार प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना का नाम उसने ज़हर कहा, ज़हर का घड़ा है, वृक्ष, ज़हर का वृक्ष है वो तो। विष्कुंभ है, विष्कुंभ, घड़ा विष का है। आहाहा!

एक बूँद विष का पिये तो-तो मरण हो जाए और वो तो गटागट पीता है। शुभभाव से धर्म होता है, शुभभाव से धर्म होता है। शुभभाव मेरे में होता हैं, मैं करनेवाला हूँ, उससे मेरे को धर्म होगा, लाभ होगा। प्रभु! आहाहा! भूल गया, तू भूल गया! स्वभाव को भूल गया। चिन्मात्र मैं आत्मा हूँ। 'मात्र' शब्द से राग को निकाल दिया, राग को निकाल दिया। आहाहा! मेरे द्रव्य में राग नहीं (है), मेरे द्रव्य में ज्ञान (है)। हमारे क्षेत्र में ज्ञान (है), राग नहीं। हमारे स्वभाव में उपयोग (है), राग नहीं। हमारे भाव में ज्ञान (है), राग नहीं। आहाहा! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव मैंने तपासा। आचार्य भगवान कहते हैं कि मैंने तपास (पता)

करके लिखा (है) कि राग मेरे स्वभाव में नहीं है और आपके स्वभाव में भी नहीं है। ऐसे आत्मा का ज्ञान और श्रद्धान कर लो, उसका नाम निश्चय मोक्षमार्ग है।

चिन्मात्र आहाहा! एक शब्द है। सिर्फ, ओन्ली, फ़क्त। चिन्मात्र, ज्ञानमात्र, जाननेवाला है। आहाहा! करनेवाला नहीं है। आहाहा! आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानना। उसमें द्रव्य, गुण और पर्याय तीन आ गया। पहले आत्मा (वो) द्रव्य, उसका स्वभाव (है); ज्ञान, (वो) गुण आ गया; (और) ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानना, (वो) पर्याय आ गई। द्रव्य, गुण, पर्याय (तीनों आ गए)। आहाहा! अकेला द्रव्य को मानता है या पर्याय (को)? अरे! द्रव्य-गुण-पर्याय है, ऐसा जानता है। ऐसा ज्ञान जानता है। आहाहा! द्रव्य को आत्मा मानकर द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है।

मुमुक्षुः- द्रव्य को आत्मा मानकर द्रव्य-गुण-पर्याय को आत्मा जानता है!

उत्तरः- जानता है।

मुमुक्षुः- सम्यक्‌एकांतपूर्वक सम्यक् अनेकांत (होता है)।

उत्तरः- अनेकांत होता है। जिसको आत्मा का भान होता है, उसको परिणाम का ज्ञान। आत्मा का भान होता है, उसको पर्याय का ज्ञान हो जाता है, सम्यग्ज्ञान। **चिन्मात्र ज्योतिकी, वस्तुस्वभावसे ही, सामान्य और विशेषसे परिपूर्णता होनेसे,** वस्तु सामान्य-विशेषरूप है। सामान्य यानि दर्शन गुण का नाम सामान्य है; और विशेष, ज्ञान गुण का नाम विशेष है। वो दर्शनोपयोग की बात नहीं और ज्ञानोपयोग, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान की बात नहीं। त्रिकाली गुण (की बात है)।

दर्शन नाम का गुण है, वो उसका सामान्य और ज्ञान गुण है, (वो) विशेष। तो दर्शन और ज्ञान, ऐसे दो गुण से मैं परिपूर्ण हूँ। आहाहा! केवलज्ञान हो तो मैं परिपूर्ण होऊँगा तभी, (ऐसा माने कि) अभी अपूर्ण और तभी पूर्ण, तो केवलज्ञान होनेवाला ही नहीं है। केवलज्ञान किसको होता है कि, वर्तमान में परिपूर्ण हूँ, ऐसी अंतर्दृष्टि से जो आत्मा का अनुभव करता है और उसमें लीन हो जाता है, चारित्र, तो केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। केवलज्ञान की शक्ति अंदर पड़ी है, वो शक्ति की व्यक्ति प्रगट हो जाती है। ज्ञानावरण कर्म का अभाव हुआ इसलिए केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, ऐसा है नहीं। वो निमित्त-प्रधान कथन है। शक्ति की व्यक्ति, क्षणिक-उपादान प्रधान कथन है। और मैं त्रिकाल-उपादान, आहाहा! उसकी बात तो क्या करें?

मैं ज्ञानदर्शनसे परिपूर्ण हूँ। अभी, अभी की बात है। सभी आत्मा ऐसे हैं, अभी। आहाहा! कभी? अभी। आहाहा! मगर श्रद्धा में ले तो ज्ञान में वो (आत्मा), आहाहा! प्रतिमा की स्थापना कर दे। उपयोग में उपयोग है। उपयोग में प्रतिमा, यह प्रतिमा, वीतरागी प्रतिमा, उसकी स्थापना कर दे। वह प्रतिष्ठा है, वह प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठित कर दे आत्मा को। आहाहा!

होनेसे, मैं ज्ञानदर्शनसे परिपूर्ण हूँ।-ऐसा मैं, अभी चार बोल आए। **ऐसा मैं**, अभी जिसको आत्मा का अनुभव होनेवाला है, उसको पूर्व भूमिका में, यह व्यवहार आता है। आत्मा जैसा है, वैसा निर्णय करना, उसका नाम व्यवहार है। अनुभव करना, उसका नाम निश्चय है। व्यवहार को मानता हो कि नहीं तुम? आहाहा! ये ज्ञानी ही व्यवहार-निश्चय को जानता है। अज्ञानी के पास निश्चय भी नहीं और व्यवहार भी नहीं। आहाहा! अज्ञानी तो मानता है कि शुभभाव करना व्यवहार (है)। नय-नय, जैसा

आत्मा का स्वभाव है, ऐसा भावमन के संबंध से, आत्मा का निर्णय करना, अनुभव (के) पहले, उसका नाम व्यवहार है। आहाहा! और वो विकल्पातीत, मनातीत होकर प्रत्यक्ष आत्मा का अनुभव होता है, उसका नाम निश्चय है।

आहाहा! ऐसा जीव लिया है, ऐसा जीव लिया है, शिष्य, ऐसा लिया है कि जो सुने, समझे, बाद में निर्णय करके अनुभव कर ले। ऐसा शिष्य, निकटवर्ती शिष्य है। निकटवर्ती यानि आत्मा की रुचिवाला, इसलिए निकटवर्ती। मेरे पास आया इसलिए निकटवर्ती नहीं। क्या कहा? मेरे पास आया है इसलिये निकटवर्ती नहीं है। आत्मा की रूचि उसको जग गई है। वो प्रश्न से ज्ञानी ने माप निकाल दिया। आहाहा! प्रश्न से वो जान लिया कि वह आत्मार्थी जीव है, निकटवर्ती है। अभी उसको आत्मा का निर्णय होकर अनुभव हो जाएगा और इधर बैठ-बैठकर अनुभव करके बाहर जाएगा, ऐसी तैयारीवाला आत्मा आया है।

शिष्य भी कोई ऊँचे प्रकार का (है), गुरु तो ऊँचा है ही। आहाहा! गुरु-शिष्य की संधि है। आहाहा! गुरु भी कोई अपूर्व और शिष्य भी कोई रुचिवाला, तैयारीवाला, निकट-भव्य। भव्य तो था, मगर निकट-भव्य जीव पूछता है, प्रभु! मैं चार गति का दुःख भोगता हूँ, अभी दुःख सहन होता नहीं है। मैं राजा हुआ, सेठीया (सेठ) हुआ, स्वर्ग (में) देव हुआ, मगर सुख-शांति हुई नहीं। दुःख का नाश (और) सुख की प्रगटता कैसे हो, कृपा करके (वो) मेरे को समझाओ। ऐसा नहीं आकर पूछा कि मेरे को कैसे लड़का हो जाए? मेरे को लक्ष्मी कैसे हो जाए? मैं कोर्ट में, कचहरी में केस (मुकदमा) कैसे जीत लाऊँ? मेरे को थोड़ा बताओ, मंत्र दो। ऐसा शिष्य है नहीं। वो वीतरागी संत के पास जाना, वो लायकात है। लायकातवाला जाता है। अल्पकाल में तो उसका मोक्ष होनेवाला है। उसके पास तो आत्मा है। गुरु के पास क्या है? मंत्र तो है, मगर भेदज्ञान का मंत्र है, जिसकी साधना से देव हाज़िर होता है। कौनसा देव? चैतन्यदेव! आहाहा!

जयपुर में ऐसी बात चली। मैंने कहा कि भेदज्ञान से देव हाज़िर होता है। तो बात चली, यह पंडित अच्छा है। ख़ानगी में (गुप्तरूप/चुपके से) जावें और पूछ लेवें। मंत्र ले लेवें और देव आवे तो माँग लेवें। जो चाहिए (वो) माँग लेवें। आहाहा! कोई रोगी, तो निरोगी हो जाऊँ। कोई पुत्र नहीं है, तो पुत्र माँग ले। धन नहीं हो तो धन माँग ले। सत्ता प्रिय है, तो मेरे को प्रमुख बनना है। बड़ा प्रधान बनना है, माँग लूँ। आहाहा!

मेरे, दूसरे दिन मेरे कान पर आया कि यह बात चलती है। दूसरे दिन खुलासा किया कि भैया! भेदज्ञान के मंत्र से यह देव हाज़िर होता है। यह परमात्मा का दर्शन होता है, उसका नाम देव है। वो देवों का भी देव है, देवाधिदेव आत्मा है। सब आत्मा हों, सब आत्मा की बात है। परमात्मा हैं सब। भगवान हैं, भगवान हो जाओ, ऐसा आशीर्वाद गुरुदेव ने दिया है। आहाहा!

तमे पामर छो, तमे समझी नहीं सको, क्या हिंदी में? तुम समझ नहीं सकते, ऊँची बात है, ऊँची बात है, ऐसा नहीं है। यह एकड़ा की बात है। शुरुआत की बात है। पहला पाठ, पहली चोपड़ी का पाठ है। आहाहा! भेदज्ञान कर। भेदज्ञान का विचार सो व्यवहार, अभेद का अनुभव सो निश्चय। आहाहा! क्या कहा? भेदज्ञान का विचार व्यवहार, क्योंकि वह मानसिक है। उसमें आनंद आता नहीं है, इसलिए

व्यवहार है। और अभेद के अनुभव में आनंद आता है, तो वह निश्चय है। आहाहा! सुबोध जी? ख्याल आया कि नहीं? आहाहा! भिंड है ना उसका गाँव। है ना, ५ दिन की शिविर।

ऐसा मैं आकाशादि द्रव्यकी भाँति पारमार्थिक वस्तुविशेष हूँ। आहाहा! जैसे आकाश निर्मल है, परिपूर्ण शुद्ध है, ऐसा मैं विशिष्ट प्रकार का, आकाश की भाँति, मैं भी, आहाहा! निरंजन हूँ, अंजन मेरे में नहीं है। आहाहा! आकाश का दृष्टांत दिया। अर्थात्, आकाश के लिए, आकाश, किसी के आधार से नहीं रहता है। निरावलंबी है। ऐसा मैं भी निरावलंबी हूँ। देह का आधार अभी मेरे को नहीं है। देह के आधार से मैं रहा ही नहीं हूँ, शुभाशुभभाव का आधार भी मेरे को नहीं है। मैं तो आकाश की भाँति, आहाहा! निरावलंबी तत्त्व हूँ, परिपूर्ण शुद्ध हूँ, निरंजन हूँ, आहाहा! आकाश में मैल होता नहीं है, ऐसे।

पारमार्थिक वस्तुविशेष खास, परमार्थिक वस्तु विशेष, खास वस्तु, खास! **इसलिए अब मैं समस्त परद्रव्यप्रवृत्तिसे निवृत्ति द्वारा** यानि परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर.... परद्रव्य की निवृत्ति का अर्थ परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर। परद्रव्य को आकाश में भेजने की बात नहीं है। लक्ष्य छूट जाता है, बस। आहाहा! परद्रव्य तो रहता है, परद्रव्य का त्याग नहीं होता है। परद्रव्य का लक्ष्य का त्याग होता है और आत्मा का लक्ष्य का ग्रहण होता है। ग्रहणपूर्वक त्याग (होता है)।

परद्रव्यप्रवृत्तिसे निवृत्ति द्वारा इसी आत्मस्वभावमें निश्चल रहता हुआ, समस्त परद्रव्यके निमित्तसे विशेषरूप चेतनमें होनेवाले वो बात नयी आयी। देखो! **चेतनमें** चेतन में, वो चेतन में कल्लोल नहीं होता है। चेतन का विशेष जो है, पर्याय में, उसमें **होनेवाले चंचल कल्लोलोंके निरोधसे**, आहाहा! क्या कहा? कि पर्याय जो है, ज्ञान की पर्याय, विशेष। ज्ञान में चंचलता नहीं है। ज्ञान तो स्थिर होता है, ज्ञानगुण, आत्मा। उसकी जो पर्याय है, बहिर्मुख पर्याय, उसमें चंचलता आती है। क्योंकि उसके अंदर ज्ञेय से ज्ञेयान्तर, ज्ञेय से ज्ञेयान्तर, इसको जानूँ, उसको जानूँ, (ऐसा होता है) तो कल्लोल होता है। जैसे समुद्र में, मौजा में (लहरों में) कल्लोल है। वो समुद्र तो स्थिर है, समुद्र स्थिर है। ऐसे आत्मा तो स्थिर है। मगर जो पर के लक्ष्य से वो विशेष चेतन में, कल्लोल उत्पन्न होता था, विकल्प, आहाहा! वो **चेतनमें होनेवाले चंचल कल्लोलोंके निरोधसे**, आहाहा! उसका निरोध कर दिया। ज्ञान तो बहिर्मुख था। वो ज्ञान अंतर्मुख होता है, तो चंचलता निकल जाती है।

निरोधसे इसको ही (इस चैतन्यस्वरूपको ही) अनुभव करता हुआ, अपने अज्ञानसे आत्मामें उत्पन्न होनेवाले जो यह क्रोधादिक भाव हैं उन सबका क्षय करता हूँ- ये कल्लोल मिटा दो, क्रोध भी मिट गया। पर को जानना बंद हुआ। आहाहा! कल्लोल मिटा दो। मिट गया कल्लोल, क्रोध भी मिट गया।

ये तो कोई शास्त्र है! दैवी-शास्त्र है, भागवती-शास्त्र है, ऐसा टीकाकार ने नाम दिया है। हाँ! परमागम है। अंधे की आँख है, अंधे की आँख है, आहाहा! कोई ऐसे समय (पर) कुंदकुंदाचार्य भगवान ने शास्त्र की रचना, नवतत्त्व का भर दिया, अंदर में।

उन सबका क्षय करता हूँ-ऐसा आत्मामें निश्चय करके, बस, यहाँ तक तो अभी अज्ञानी है। यहाँ तक तो (अज्ञानी है)। अज्ञानी है मगर ज्ञानी होनेवाला है, ऐसा अज्ञानी है। हाँ! अज्ञानी लंबायेगा

नहीं, अज्ञान लंबायेगा नहीं। हाँ! अभी अज्ञान टल जाएगा। अज्ञानी है, मगर ज्ञानी होने की तैयारी है, ऐसा अज्ञानी है। वो निर्णय करता है। आहाहा! निर्णय यथार्थ हो गया तो आधी बाजी तो हाथ में आ गई। आधा काम हो गया। आहाहा! निर्णय, मात्र निर्णय। इसमें एक पैसा का खर्च नहीं। इसमें एक पैसा का खर्च नहीं। बैठे-बैठे विचार करता है कि मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममत्वहीन हूँ, ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण परमात्मा हूँ, ऐसा मन के संग से निर्णय करता है। ज्ञान के संग से अनुभव होता है, मन के संग से तो निर्णय होता है। वो निर्णय, उसमें आनंद है? नहीं है। आहाहा! निर्णय में आनंद नहीं है, अनुभव में आनंद है। निर्णय किया, आहाहा! अभी अज्ञान कैसे टल जाता है उसको, वो बात आती है।

ऐसा आत्मामें निश्चय करके, जिसने जिस जीव ने **बहुत समयसे पकड़े हुए जहाजको छोड़ दिया है**... जहाज आता है समुद्र में, उसमें वावंटोल (भ्रमरी, समुद्र के अंदर में) होता है, तो घुमरी (भँवर) हो जाती है। समझे? तो घुमरी (भँवर) में वो वाहन चले, जहाज, तो वो पकड़ जाता है। कितने भी हालेसा (धक्का) मारो, तो (भी) निकलता नहीं है। तो जब वह पवन शांत हो जाता है, शांत पवन हो जाता है। पवन का जोर आया, समझे? वो शांत होता है, पवन, तो अपने-आप वो शांत हो जाता है। तो चकरी बंद हो जाती है, तो वाहन निकल जाता है, वाहन निकल जाता है। ऐसे विकल्प के चकरावे में, ऐसा हूँ, ऐसा हूँ, ऐसा हूँ और ऐसा हूँ। आहाहा! उसमें वो आत्मा फँस गया है, विकल्प के जाल में फँस गया है। मगर ऐसा अज्ञानी है कि अभी निकल जाएगा। ज़्यादा देर नहीं है। ये भव में काम होनेवाला है। दूसरा भव आनेवाला नहीं है।

मुमुक्षु:- आपका मंगल आशीर्वाद!

मुमुक्षु:- श्रीमद् जी ने लिखा है ज्ञानी की कृपा दृष्टि, वही सम्यग्दर्शन है।

उत्तर:- पहले इनको, संत को जानता है, उसकी दृष्टि सत् पर आ जाती है। आहाहा! जो संत को पहचानता है, उसकी दृष्टि सत्य हो जाती है, क्योंकि संत तो आत्मा की ही बात करेंगे, हें? दूसरी बात तो उनके पास (है ही नहीं)। एक ही काम, २४ घंटा आत्मा का? आत्मा की बात, आत्मा की बात, आत्मा की बात, आत्मा की बात। आहाहा! ३३ सागरोपम। इधर के बारह अंगधारी, समझे? मुनिराज। स्वर्ग होता है तो ३३ सागारोपम में जाते हैं। तो ३३ सागरोपम तत्त्व की ही चर्चा चलती है, सर्वार्थसिद्धि में। ३३ सागरोपम, सर्वार्थसिद्धि में। तो सर्वार्थसिद्धि में ३३ सागरोपम हो गया पूरा। अरे! पूरा हो गया? अरे कितना! अरबो वर्ष, असंख्य अरबो बरस, असंख्य अरबो बरस, आत्मा की चर्चा में चला जाता है। कंटाला नहीं, दुःख नहीं, प्रमोद, प्रमोद, वृद्धिंगत प्रमोद आता है। कभी-कभी डुबकी मारकर आनंद का भोजन कर लेते हैं। आहाहा! ऐसी चर्चा चलती है वहाँ, सर्वार्थसिद्धि में। आहाहा! वहाँ से निकलकर ओहोहो! साधना पूरी करके मुनिदीक्षा धारण करके, अरिहंत होकर सिद्ध हो जाएँगे। आहाहा!

मुमुक्षु:- ये ही शुद्धात्मा की चर्चा चलती है साहब?

उत्तर:- हाँ! ये ही शुद्धात्मा की चर्चा करने जैसी हैं, बाकी सब विकथा है। कर्म की कथा, गुणस्थान की कथा, मार्गणास्थान की कथा, सब विकथा है। आत्मा की कथा स्वकथा है। ठीक है! जानने के लिए गुणस्थान, मार्गणास्थान, आठ प्रकार के कर्म, उत्तर-प्रकृति, १४८ कर्म की प्रकृति, सत्ता, उदय, उदीरणा, ये सब आता है गुणस्थान के बाद, पर वहाँ रुकने जैसी बात नहीं है। रुकने का एक ही

स्थल है। इधर रुक जाओ! इधर रुक जाओ! ऐसा-ऐसा (बाहर) मत करो। ऐसा (अंदर) ही करो। आहाहा!

ऐसा निर्णय किया तो वाहन निकल गया, अभी। चकरी बंद हो गई। भ्रमरी (वावंटोल) पवन का। **पकड़े हुए जहाजको छोड़ दिया है ऐसे समुद्रके भँवर की भाँति**, भँवर, भँवर आती है ना? भँवर, तूफ़ान? तूफ़ान तो है बाहर। तूफ़ान बाहर है और भँवर समुद्र में है। भँवर उपादान है, पवन तो निमित्त है।

मुमुक्षुः- एक-एक बात में रहस्य है।

उत्तरः- ऐसा है। आहाहा! **भँवरकी भाँति, जिसने सर्व विकल्पोंको शीघ्र ही वमन कर दिया है..** मैं शुद्ध हूँ, एक हूँ, अभेद हूँ, ये भेदज्ञान है। (और) ये अभेद का अनुभव है। आत्मा, एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममत्वहीन हूँ, मैं दर्शन-ज्ञान से पूर्ण हूँ, वो भँवरी है, उसमें आत्मा फँस जाता है। जैसा विकल्प है, ऐसा है, मगर विकल्प उसमें नहीं हैं। विकल्पातीत हो जाता है। विकल्प तो आता है मगर विकल्प टिकता नहीं है। विकल्पातीत-मनातीत होकर आत्मा का अनुभव कर लेता है, आत्मा। यह परंपरा भारत में चालू है। दूसरे देश में यह बात नहीं है।

अमेरिका, रशिया में है ही नहीं क्योंकि चौबीस तीर्थंकर इधर ही (हुए हैं)। आहाहा! पंचकल्याणक इधर ही होते हैं। जन्म (कल्याणक) भी इधर और मोक्ष कल्याणक भी इधर होते हैं। आहाहा! तो यह आत्मा की बात, इस भारतवर्ष में रह गई और रहनेवाली है। आहाहा! कभी-कभी भर्ती-ओट आता है, वह अलग बात है। भर्ती-ओट पंचमकाल के बाद में, छठवें काल में कोई धर्म-वर्म रहनेवाला नहीं है। आहाहा! दुःखमा-दुःखमा, छठवें काल में तो, दुःकाल। छठवाँ काल, छठवाँ काल, पंचम काल और छठवाँ काल, उसमें बरसात नहीं, गर्मी बहुत। आहाहा! कोई झाड़-वाड़ नहीं, पक्षी नहीं। और ये जो मनुष्य है, वह कद घटते-घटते इतना सा (छोटा) रह जाएगा। आहाहा! और सिंधु नदी और गंगा नदी के जो प्रवाह हैं आज, उसका प्रवाह, एक जो बैलगाड़ी है ना, बैलगाड़ी का पहिया (इतनी छोटी), ऐसी धारा रहेगी और गुफ़ा में मनुष्य रहेगा। वह गुफ़ा में रातभर तो रहेगा, दिवस में तो निकल सकता नहीं है। रात को निकलकर, वह उसमें, वह मच्छी को सेक देता है दिवस में (और) रात को खा लेता है, माँसाहारी। मगर मनुष्य का बीज रह जाता है। मनुष्य का बीज रह जाता है। समझे? ऐसा आहाहा! छठवाँ काल दुःख का। आहाहा! मगर एक बार आत्मा का अनुभव हुआ, छठवें काल में जन्म होता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षुः- ऐसी बात सुने, उसको छठवें काल में अवतार नहीं लेना।

उत्तरः- नहीं लेना। सुननेवालों को भी नहीं, ऐसा बहन कहती हैं। अनुभव करनेवाले को तो नहीं मगर ऐसे शुद्धात्मा की बात, अपनी चित्त की प्रसन्नता से सुने, (तो) भावी निर्वाण भाजनम्। सुनना हो मात्र, अभी तो, पर रुचिपूर्वक। आहाहा! प्रीतिपूर्वक जानता है, सुनता है। ओहो! मेरा आत्मा ऐसा है। महिमा आती है, आत्मा की महिमा आती है। वह महिमा अंतर में से जो आई, भावी निर्वाण भाजनम्। आहाहा! भविष्यवेत्ता हैं, मुनिराज हैं ना, भविष्यवेत्ता हैं। जैसे केवली भगवान भविष्यवेत्ता (हैं, वैसे) मुनिराज भविष्यवेत्ता हैं। ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टि किसी को निर्मल ज्ञान हो तो वो भविष्यवेत्ता है।

आहाहा! ज्ञान की शक्ति कोई, श्रुतज्ञान की शक्ति अपार है। अचिंत्य है भैया। आहाहा!

समुद्रके भँवर की भाँति, जिसने सर्व विकल्पोंको शीघ्र ही वमन कर दिया है... वमन यानि उल्टी। कुत्ता उल्टी करता है ना, ऐसा उल्टी किया तो फिर से विकल्प आता नहीं है। निकल गया, सारा निकल गया। **ऐसा, निर्विकल्प अचलित निर्मल आत्माका अवलम्बन** यानि आत्मा का विशेषण। आत्मा कैसा है? निर्विकल्प है। यानि अभेद है। निर्विकल्प यानि गुण-गुणी का भेद जिसमें नहीं है, अचलित है। पर्याय तो चलित है, ध्रुव परमात्मा तो अचलित है। और पर्याय में राग तो मलिन है, मैं तो निर्मल हूँ। ऐसा **आत्माका अवलंबन करता हुआ**, यानि लक्ष्य करता हुआ, बाहर से लक्ष्य छूट जाता है। जब सम्यग्दर्शन होता है, काल आता है, तो बाहर का लक्ष्य छूट जाता है। गुरु का उपदेश सुनता है मगर सुनने का बंद हो जाता है। सुनने का बंद हो जाता है। उपकारी गुरु का लक्ष्य छूट जाता है। अंदर में उपयोग चले जाता है। पंडाल में बैठा हुआ अनुभव कर लेता है, ऐसी स्थिति है।

आत्माका अवलम्बन करता हुआ, विज्ञानघन होता हुआ, विज्ञानघन होता हुआ, विज्ञानघन तो है, मगर परिणाम में विज्ञानघनता आती है। द्रव्य तो विज्ञानघन है, उसमें तो राग का प्रवेश नहीं है, मगर वो शुद्धोपयोग हुआ, उसमें राग का प्रवेश नहीं है। वो भी विज्ञानघन होता है, **होता हुआ, यह आत्मा आस्रवों से निवृत्त होता है।** मिथ्यात्व का छुटकारा हो जाता है, सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है।

मुमुक्षु:- पर्याय, पर्याय में स्वरूप की रचना हो जाती है?

उत्तर:- हाँ पर्याय, पर्याय में स्वरूप की रचना करती है, ऐसा है। तब लक्ष्य उसका द्रव्य पर है, तो उसके अवलंबन से हुआ, ऐसा भी कहा जाता है। होती है तो पर्याय निरपेक्ष, अपने से, पर उसका लक्ष्य आत्मा पर होता है, तो आत्मा के आश्रय से हुआ, ऐसा भी कहा जाता है।

ॐ